पुनर्नवा : भारतीय ज्ञान परम्परा से शिक्षा का कायाकल्प

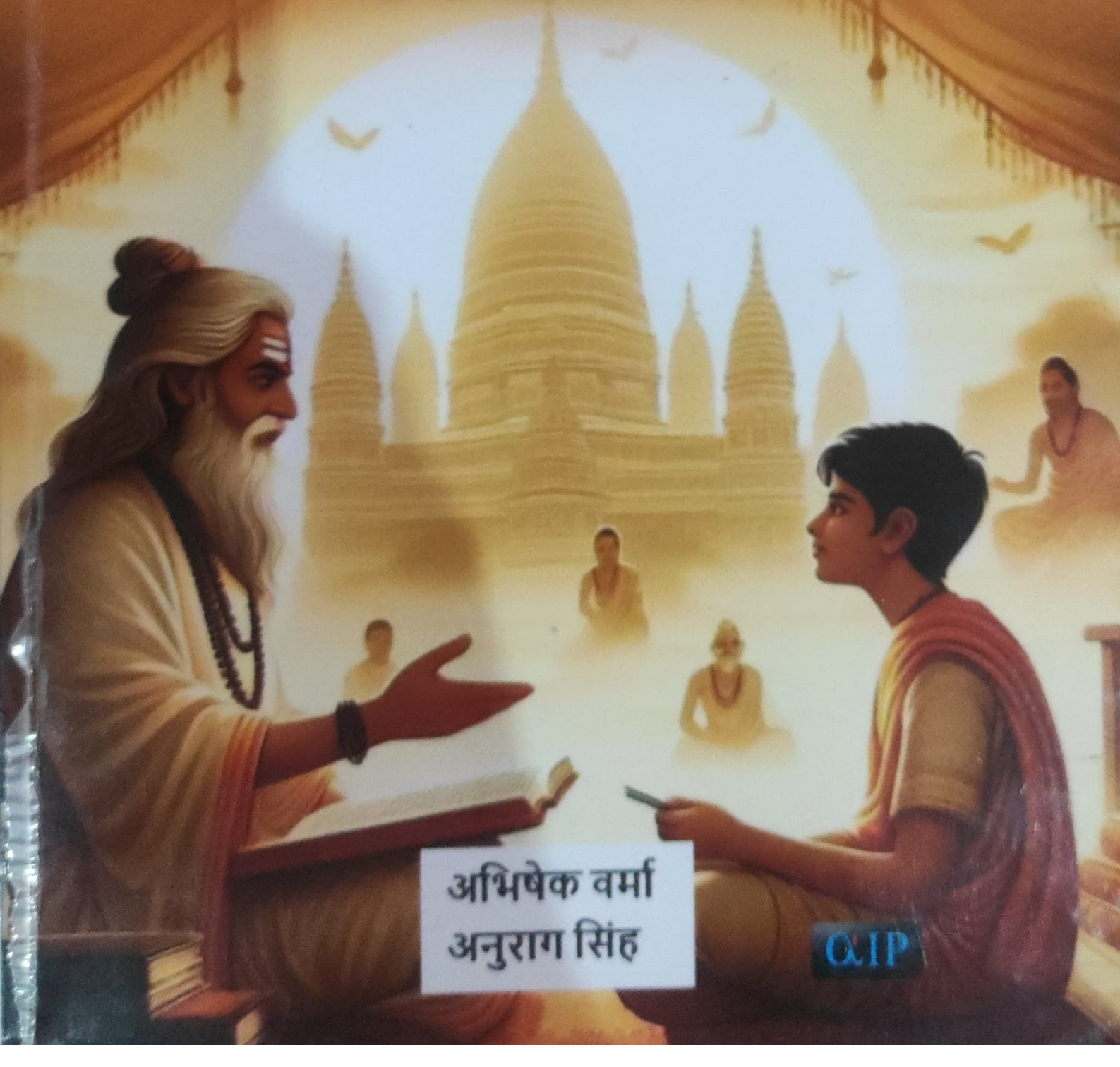

अभिषेक वर्मा
अनुराग सिंह

QIP

पुनर्नवा : भारतीय ज्ञान परम्परा से शिक्षा का कायाकल्प

संपादक

अभिषेक वर्मा

शोधार्थी, शिक्षा विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा, महाराष्ट्र

अनुराग सिंह

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा, महाराष्ट्र

αIP

शार्षक : पुनर्नवा : भारतीय ज्ञान परम्परा से शिक्षा का कायाकल्प (PUNARNAVA: REJUVENATION OF EDUCATION IN THE INDIAN KNOWLEDGE SYSTEMS)

संपादक : अभिषेक वर्मा एवं अनुराग सिंह

संस्करण : 2025 (प्रथम संस्करण)

कवर अभिकल्प : अल्फा इंटरनेशनल पब्लिकेशन (एआईपी)

कॉपीराइट © लेखक

इस संपादित पुस्तक का कोई भी भाग किसी भी रूप में, किसी भी साधन से, इलेक्ट्रॉनिक या यांत्रिक, फोटो-कॉपी, रिकॉर्डिंग, या किसी भी सूचना भंडारण और पुनर्प्राप्ति प्रणाली सहित, बिना कॉपीराइट धारकों से लिखित अनुमति के पुनरुत्पादित या प्रसारित नहीं किया गया है।

अस्वीकरण

इस संपादित पुस्तक में प्रकाशित सामग्री के लिए केवल लेखक (शोधार्थी) ही उत्तरदायी हैं। प्रकाशक या संपादक किसी भी प्रकार से इसके लिए उत्तरदायी नहीं होंगे। यदि कोई त्रुटि हो तो वह पूर्णतया अनिच्छानुकूल है और पाठकों से अनुरोध है कि भविष्य में असंगतियों से बचने के लिए ऐसी त्रुटियों की सूचना संपादकों या प्रकाशकों को दें।

ISBN:978-93-7361-743-5

अधिकतम खुदरा मूल्य. **1100/-**

पब्लिशर एवं प्रिंटिंग:

अल्फा इंटरनेशनल पब्लिकेशन (एआईपी)

Website: www.alphainternationalpublication.com

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषयवस्तु	पृष्ठ सं.
1.	भारतीय शिक्षा दर्शन और सामुदायिक हस्तक्षेप: सामाजिक परिवर्तन का एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य **-सरिता शर्मा एवं वरुण कुमार उपाध्याय**	01-11
2.	भारतीय ज्ञान परम्परा और प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त **-डॉ. नरेन्द्र कुमार पोयाम**	12-26
3.	भारतीय शिक्षा की सांस्कृतिक जड़ें: गुरुकुल परंपरा की समकालीन प्रासंगिकता **-डॉ. प्रेम सुख**	27-38
4.	समग्र एवं अंतर्वैषयिक अधिगम: नवाचार, नीति और शिक्षण की एकीकृत दिशा में बढ़ता कदम **-डॉ. संगीता सक्सेना एवं सविता यादव**	39-50
5.	भारत में सामाजिक विकास: एक उपागम **-डॉ. भुपेन्द्र कौर**	51-63
6.	भारतीय ज्ञान परम्परा में पर्यावरण संरक्षणः हिन्दू धर्म के विशेष संदर्भ में **-डॉ. रमेश कुमार**	64-74
7.	आदिवासी शिक्षा में भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेश **-अभय कुमार**	75-89
8.	भारतीय ज्ञान परम्परा में वैदिक शिक्षा पद्धति तथा वैदिक साहित्य की उपादेयता **-डॉ. सिद्धार्थ सिंह एवं संतोष कुमार पाण्डेय**	90-102
9.	आधुनिक भारतीय परंपरा एवं सांस्कृतिक पहचान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन **-शुभम कुमार मिश्रा एवं प्रतीक्षा मिश्रा**	103-110
10.	योग-चेतना एवं मनोविज्ञान: भारतीय परम्परागत दृष्टिकोण का अनुशीलन **-स्मृति त्रिपाठी**	111-122
11.	गांधी की नई तालीम और समग्र ज्ञानपरम्परा – सीखने-समझने का नवाचारी मॉडल **-दीपेन्द्र बाजपेयी**	123-134
12.	लिंगविचार: ट्रांसजेंडर दृष्टिकोण और भारतीय पारम्परिक ज्ञान **-प्रमोद कुमार**	135-145
13.	बौद्ध दर्शन में नैतिक जीवन मूल्यों की अवधारणा **-ओमप्रकाश बौद्ध**	146-151

14.	गुणन-भागन के सूत्र: भारतीय ज्ञान-परम्परा में अंकगणित का स्थान -आकांक्षा वर्मा	152-157
15.	भारतीय बौद्धिक परम्परा में हिंदी भाषा शिक्षा की वर्तमान छवि -अनुराधा बड़ाईक	158-166
16.	नारी चेतना : भारतीय ज्ञान परम्परा में दलित नारी विमर्श -ललिता	167-175
17.	भारतीय ज्ञान परम्परा आधारित शिक्षणशास्त्र और भविष्य की संभावनायें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में -डॉ. शालू तिवारी	176-186
18.	सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करने में पंचकोश सिद्धांत की एकात्मकता -परमानन्द त्रिपाठी	187-197
19.	आधुनिक युग में योग शिक्षा की प्रासंगिकता: एक विवेचनात्मक अध्ययन -आकांक्षा सिंह एवं प्रो.अर्चना सिंह	198-206
20.	भारतीय ज्ञान प्रणाली वैश्विक एवं क्षेत्रीय परिपेक्ष्य -सुमन पाण्डेय	207-212

भारत में सामाजिक विकास: एक उपागम

*डॉ. भुपेन्द्र कौर

शोध सार

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, परिवर्तन ही सब वस्तुओं के प्रारूप को बदल देता है, परिवर्तन से परे कुछ भी नहीं है, यह एक ऐसा अकाट्य सत्य है कि समय के साथ नवीन (परिवर्तन) धारणएँ उत्पन्न होती रहती हैं। ब्रिटिशों के आने से विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक क्रान्ति हुई तथा आविष्कृत वस्तुओं से भारतवर्ष लाभान्वित हुआ। इससे धार्मिक, सामाजिक आडम्बर तथा रूढिवादिता कम हो गई और भारत कर्मशील बन गया। सामाजिक-धार्मिक सुधार के मार्ग प्रशस्त हुए। आज नव समाज निर्मित हो चुका है जो रूढिवादिता सांप्रदायिकता एवं बाह्य आडम्बरों से मुक्त है। यह एक विकासशील देश बनकर विश्व विख्यात हो चुका है। सामाजिक परिवर्तन ही समाज का मुख्य आधार है। यह विकास ही वैज्ञानिक मानसिकता का धोतक है। विकास एक ऐसी क्रिया है जो तीव्र एवं मंद दोनों गति से होती रहती है। मानव का यह जीवन स्थिर या अस्थिर नहीं होता। हमारे देश में सामाजिक विकास पश्चिमी समाज के आधार पर हो रहा है। इस सामाजिक परिवर्तन को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अधिकाधिक मोडना वांछनीय है परन्तु बदलाव के मार्ग की बाधाओं, विशेष रूप से परम्परागत अन्धविश्वासों, रूढियों और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण को बदले बिना विकास संभव नही है। इस सम्बन्ध में भविष्य के बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता किन्तु देश की समस्याओं के अनुसार सामाजिक परिवर्तन ही दिशाओं को नियन्त्रित करना है तों बदलाव की वांछित दिशाओं और लक्ष्यों को निर्धारित करके नियोजनपूर्वक परिवर्तन लाता होगा।

परिभाषिक शब्दावली: भारतीय ज्ञान परम्परा, सामजिकता, शिक्षा।

प्रस्तावना

समाज परिवर्तन के संदर्भ में 'विकास' शब्द का अभिप्राय समाज में सभी दिशाओं में परिवर्तन है। विकास का भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे पृथक्-पृथक् उददेश्य होता है जिसमें स्थिति स्थानान्तरण से विकास अग्रसर होता है। इस प्रकार से

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

विकसित होने का परिणाम तीव्र या मंद भी हो सकता है। मानव के सामाजिक जीवन में यही विकास होता है। मानव का यह जीवन स्थिर या अस्थिर नहीं होता। इसमें अपनी एक गति होती है। और इसी गति के कारण उसके सामाजिक जीवन में परिवर्तन की स्थिति बनती हैं। ये स्थितियाँ अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी लेकिन सामाजिक जीवन का बहाव इस अच्छे और बेरे के बीच में आगे बढता जाता है। उसका इस प्रकार आगे बढना ही विकास हैं। सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में 'विकास' शब्द का प्रयोग यह दर्शाने के लिए करते है कि मनुष्य को अपने अनुभव और कौशल के आधार पर प्राकृतिक पर्यावरण से किस सीमा तक छुटकारा मिलता जा रहा है। वर्तमान समय में भारत में ग्रामीण-शहरी विकास, आर्थिक विकास, शैक्षिक-सांस्कृतिक विकास, निर्माण योजनाएँ कतिपय उदाहरण है।

समाज की उन्नति

भारत के समाज का विकास अत्यधिक प्राचीन है जो प्रागैतिहासिक दौर से ही शुरू हो जाता है। इस युग का इतिहास एवं जानकारी हमें पुरातात्विक सामग्री से ही प्राप्त होती है। "सम्पूर्ण भारत में फैली हुई सहस्त्रों की संख्या में कन्दराये, पर्वतीय शिलाएँ स्तम्भ, प्रस्तर एवं धातु-पटल, मुद्राएँ तथा खण्डहर अपने गर्भ में अतीत के चिरन्तन सन्देश को छिपाये बैठे हैं। इतिहास जिज्ञासुओं के अन्वेषण एवं उत्खनन के पश्चात् इन मूक प्रहरियों के रहस्य के काफी कुछ उद्घटन से प्राचीन भारत के इतिहास के स्वरूप को सुव्यस्थित और श्रंृखलित करने में बडा योग मिला है।" इस पुरातात्विक सामग्री तथा अन्य रूपरेखा उद्भव करने का प्रयास करेंगे। भारतीय समाज का विकास या क्रमिक-विकास जिन युगों में से गुजरकर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है उन्हे हम निम्नवत् वर्णित कर सकते है

ऐतिहासिक काल

भारतीय इतिहास की प्राचीनतम सामग्री के लिए हमें कुछ वर्ष तक वैदिक साहित्य का ही सहारा लेना पडता था और हम वैदिक आर्य-सभ्यता व समाज व्यवस्था को ही अपनी सबसे पुरातन सभ्यता समझते थे। इसका कारण यह था कि ऐतिहासिक ज्ञान के साधनों की कमी होने के वजह से वैदिक काल के पूर्व का इतिहास तिमिराच्छादित था। परन्तु सिन्धु घाटी में हडप्पा (पंजाब) और मोहनजोदडो नामक स्थानों में होने खुदाइयों से मिलने वाले अवशेषों से यह अन्धकार विलीन हो गया। "आशा एवं स्फूर्ति की नूतन किरणों के आलोक में इतिहास-जिज्ञासुओं ने अतीत की गुप्त

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

धरोहर का उद्घाटन किया।" इससे भारतीय इतिहास में नये अध्याय की संयोजना हुई। अब ये सिन्धु घाटी सभ्यता के स्थल पाकिस्तान में हैं।

पूर्व-वैदिक काल

भारतीय समाज के राजनैतिक इतिहास का विवरण हिन्दुओं के चारों पवित्र वेदों में से एक ऋग्वेद से प्राप्त होता है। इस वेद की रचना पूर्व वैदिक काल में हुई थी। जिसकी समाज-वयवस्था का विकास आर्यो ने किया था। डा. घुरिये के अनुसार आर्य लोग भारत में ईरान से ईसा के 2,500 वर्ष पूर्व आये और यहाँ के मूल निवासियों को उन्होंने दस्यु, कहकर अपमानित किया। ईरानी भाषा में जिसका अर्थ 'शत्रु' है। जब वे भारत आये थे तो उनमें न्यूनतम तीन स्पष्ट वर्ग थे, जिनमें आपस में विवाह अक्सर नहीं होते थे, यद्यपि ऐसे विवाह प्रतिबंधित न थे। भारत में आने पर उन्होंने सबसे पहले यहाँ के आदिवासियों से बनु शूद्रों को अपने धार्मिक पूजा इत्यादि के क्षेत्र से अलग कर दिया और उनके साथ विवाह करने पर कडा प्रतिबंध लगाया, जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज-व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का जन्म हुआ। आर्यो के राजनीतिक तथा सामाजिक जहवन की इकाई परिवार था। यह परिवार पितृसत्तात्मक होता था। परिवार का प्रधान पिता होता था जो परिवार के सदस्यों पर पूरा नियन्त्रण रखता था। कई परिवारों को मिलाकर एक गांव का निर्माण होता था। ग्राम का प्रधान 'ग्रामणी' कहलाता था। कई गांव मिलकर 'विश' का निर्माण करते थे। 'विश' का प्रधान 'विशपति' कहलाता था। संपूर्ण समाज वर्गों में बँटा हुआ था। 'ग्रामीण' 'ग्रामणी' जो प्राय वय हुआ करते थे, 'विशपति' के नियन्त्रण में काम करता था। कई विशों को मिलाकर एक 'जन' की रचना होती थी। 'जन' का रक्षक 'गोप' कहलाता था जो ज्यादातर राजा स्वयं हुआ करता था। ऋग्वैदिक काल का राजा स्वयं निर्णायक वहीं होता था; उस पर वयोवृद्ध तथा तथा मान-मर्यादा वाले लोगों की सभा व समिति का नियन्त्रण रहता था। पुजारियों एवं पुरोहितों को भी शासक अथवा राजा पर पूर्व अधिकार होता था। इस युग के अन्तगत बहु विवाह का प्रचलन विद्यमान नहीं था। इस समय दास वर्ग एक ही विवाह करता था लेकिन राजा कई विवाह कर सकता था। विवाह में पिता का अधिक नियन्त्रण रहता था फिर भी वर-कन्या को भी अपना जीवन साथी चुनने के मामले में पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती थी। ऋग्वैदिक काल में स्त्री-धन तथा कन्या-मूल्य दोनों की प्रथा थी। विवाह एक पवित्र बन्धन माना जाता था इस संबंध को मनुष्य के द्वारा तोडा नहीं जा सकता था। विधवाओं के कलए पुनर्विवाह का संकेत हमें इस युग में नहीं मिलता, परन्तु

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

ऋग्वेद की एक सूक्ति से यह पता चलता है कि पुत्र-विहीन या सन्तान की उत्पत्ति के लिये स्त्री अपने पति के भाई के साथ विवाह कर सकती थी।

इस युग में विभिन्न विद्वानों में यह स्पष्ट नहीं था कि वर्ण व्यवस्था थी या नहीं पर इतना तो निर्विवाद है कि आर्यो तथा अनार्यो में शुरू से ही कुछ न कुछ सामाजिक दूरी थी और गौर-वर्ण वाले व ऊँचे डील-डौल के आर्य लोग कृष्ण वर्ण वाले तथा छोटे डील-डौल के अनार्यों को घृणाभरी नजरो से देखते थे। आर्यों के भी वर्ण आधारित अलग-अलग वर्ग उत्पन्न होने प्रारम्भ हो गये थे। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का वर्ग अलग था, दूसरे साधारण स्वतन्त्र व्यक्ति 'विश' कहलाते थे। इस प्रकार इस काल में यद्यपि वर्ण-व्यवस्था का संकेत मिलता है फिर भी जाति में अभी जटिलता नहीं आयी थी और इसके बन्धन मजबूत हो पाये थे। उस समय अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं लगे थे और लोग अपने व्यवसाय को स्वतन्त्रतापूर्वक चुन सकते थे और उसको परिवर्तित भी कर सकते थे। इस युग में अस्पृश्यता का जन्म नहीं हुआ था और ऐसा प्रतीत होता है कि खन-पान के सम्बन्ध में भी कोई महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध नही था। इा युग में आश्रम-व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी और क्षत्रिय-ब्राह्मण तथा वैश्य को आश्रम धर्म पालन करना पडता था।

जन्मावस्था से लेकर मृत्यु अवस्था तक प्रायः पिता, पति व पुत्र की रक्षा में रहते हुए भी महिला को समाज में एक महत्वपूर्ण सथान मिलता था। आर्यो के धार्मिक जीवन की अमूल्य निधि वेदों में आज भी निहित है। प्रकृति की पृथक-पृथक शक्तियों की देवी-देवता के रूप में पूजा की जाती थी। इसलिए वरूण, सूर्य, अग्नि, सोम इत्यादि की आराधना की जाती थी। इसी प्रकार आर्यो के धार्मिक कृत्यों में यज्ञों तथा देव-स्तुति का विशष स्थान था। लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते थे, मृतकों की अंतिम क्रिया आदरपूर्वक की जाती थी, पितरों की पूजा का भी प्रचलन था।

उत्तर-वैदिक काल

ऋग्वेदिक सभ्यता के अन्तिम दौर तक आर्यों की गतिविधियों का क्षेत्र पंचनद प्रदेश था जो सिन्धु को छोडकर पूर्व तथा दक्षिण तक भारत में उत्तर-पश्चिमी प्रदेश, जो कभी आर्यो के प्रधान क्रिया-संस्कृति की विजय-वैजयन्ती गंगा-यमुना के पावन आंचल में स्थित अन्तर्वेद अथवा मध्य प्रदेश अथवा पालि साहित्य के 'प्रदेश' में फहराने लगी थी। कुरूक्षेत्र इस संस्कृति का प्रधान केन्द्र बन गया था। राजनैतिक पटल पर काशी, विदेह, आन्ध्र, अंग, कम्पिल्य, कौशल, अंग जैसे राज्यों का जय-घोष दृष्टिगोचर होने लगा था। इसका ज्ञान हमें इसी युग में रची गई ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

अथर्ववेद की संहिताओं तथा ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् ग्रन्थों से होता है। कोशल, काशी और विदेह राज्य उत्तर-वैदिक काल की संस्कृति व सभ्यता के केन्द्र माने जाते थे। इस काल में राजतन्त्रात्मक रूासन प्रणाली प्रचलित थी। राजा का पद पैतृक हो गया था। कई जगह पर वैराज्य राज्यों की भी व्यवस्था की गयी है जहाँ या तो राजा नहीं होता था या उसको निर्वाचित कर दिया जाता था एवं राज्य सिंहासन सबसे ज्यादा योग्य और सबल व्यक्ति को दे दिया जाता था। अथर्ववेद में ऐसे निर्वाचनों के विषय में प्रकाश डाला गया है। इस युग में राज्याभिषेक का धार्मिक, संवैधानिक और राजनैतिक महत्व था। राज्याभिषेक राज-पुरोहित करता था और वह जनता व राष्ट्र के प्रति अपने कत्र्तव्यों व उत्तरदायित्व को समझता था। राज्य का यजुर्वेद में ऐसे निर्वाचन का उल्लेख मिलता है।

महाकाव्य काल

इस युग में महाकाव्य युग के नाम से पुकारा जाता है भारतीय संस्कृत साहित्य के अन्र्तगत रामायण को प्राचीन ग्रन्थ अथवा आदि काव्य तथा महाभारत को इतिहास पुराण स्वीकार किया गया है। रामायण और महाभारत दो प्रसिद्ध महाकाव्य है तथा भारतीय संस्कृति के वे प्रकाश-स्तम्भ हैं जिनके पवित्र पवित्र आलोक में हम आर्य-संस्कति के भव्य स्वरूप को देखते हैं। बौद्ध काल से पूर्व रामायण की रचना हुई है जबकि महाभारत की रचना का काल 2000 ई. पू. और 200 ई. पू. के बीच माना जाता है। महाभारत का ही एक अंग भगवद्गीता है। जो कुरूक्षेत्र की रणभूमि पर आधारित है। यह अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये उपदेशों से समृद्ध है। महाकाव्य के युग में आर्य पूर्व ओर अग्रसर हुए और उन्होंने नवीन राज्य स्थापित कर लिये थे। कौशाम्बी, कौशल, कुरू, पांचाल, काशी, विदेह इत्यादि इस युग के मुख्य विशाल राज्य थे। मगध और अंग जैसे राज्यों का भी वर्णन इन महाकाव्यों में है। इस युग का राजा अपने पूर्ववर्ती शासकों की तरह निरंकुश या स्वेच्छारी नहीं होता था। अपने राजपुरोहितों, मंत्रियों, बन्धु-बाँधवों आदि के विचारों का ध्यान रखना, उसका मुख्य धर्म था। राजा का पद वंश-परम्परागत होता था। युवराज का राज्याभिषेक बडी शान-शौकत से विधिपूर्वक पूरा होता था। राजा को प्रजा का अनुरंजन और रखण करने वाला माना जाता था। राजसभा में रापुरोहित का अत्यधिक आदर था। राजनैतिक शक्ति क्षत्रियों के हाथ में थी और वे अपने को ब्राह्मणों से अधिक श्रेष्ठ समझते थे। तीसरा वर्ण व्यापारियों व कृषकों का था। सबसे नीचे दास वर्ण था।

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

साधारण रूप से व्यक्ति ग्रामों में रहा करते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे दुर्ग बने होते थे। संकट काल अथवा आक्रमण के समय में सामान्य जन समूह के यह दुर्ग स्थल हुआ करते थे। ग्राम अक्सर आत्मनिर्भर होते थे। प्रत्येक ग्राम की भूमि सम्पूर्ण ग्राम की या सामूहिक होती थी। नगर भी देखने को मिलता था जहाँ कि राजा, वणिक तथा दूसरे व्यवसायी रहते थे। इस काल में चतुर्वर्ण-व्यवस्था समाज का मूल आधार बन चुकि थी और सबके कत्तव्य-कर्मों को स्पष्ट कर दिया गया था।

जैन एवं बौद्ध काल

भारत में ईसा पूर्व छठी शताब्दी में एक महान् आन्दोलन व क्रान्ति के समय में कुल छोटे-बडे 26 राज्य थे, इन राज्यों में कुछ राज तंत्र और कुछ गणतंत्र राज्य सम्मिलित थे। इन दोनों प्रकार के महाजन पदों या राज्यों में क्रान्ति शुरू हो गई। आर्यो और अनार्यो के बीच धार्मिक आदर्शो का सम्पर्क व संर्घष सघन हो गया था। साथ ही वैदिक युग में प्रतिष्ठित और प्रसारित चतुर्वर्ण-व्यवस्था सैकडों वर्षो बाद अपनी अपरिवर्तनशीलता के कारण अव्यावहारिक हो गई थी।

समाज में ब्राह्मणों की सर्वोपरिता थी और उन्हेंसबसें अधिक विशेष अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त थी। दूसरी ओर अस्पृश्यता की भावना मजबूत होने के कारण अछूत जातियों को धार्मिक अधिकारों से सर्वथा वंचित किया गया था। साथ ही, धर्म का सथान कठिन निरर्थक कर्मकाण्ड ने ले लिया था। चूँकि ब्राह्मणों ने इस तथ्य पर अधिक-से-अधिक जोर दिया कि मानव-मुक्ति के लिये धार्मिक क्रिया विधियों, संस्कारों, यज्ञों, हवनों, अनुष्ठानों इत्यादि को विधिवत् सम्पन्न किया जाये-ये ही धर्म के प्रमुख अंग हैं।

उस समय तक बहुदेववाद का पूरा विकास हो गया था और मनुष्य देवताओं की अनुकम्पा का मोहताज बनने लगा और अपना आत्मविश्वास, पुरूषर्थ व व्यक्तित्व खो बैठा। अहिंसा का आदर्श जन-जीवन में विस्तृत हो गया। पंचशील का सिद्धान्त बौद्ध के द्वारा दिया गया, जो आज भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की आधार-शिला बन सकता है, जाति-प्रथा, ऊँचा-नीच और छूआछूत के विरोध इसी धर्म ने किया तथा एक ऐसे वातावरण और जनमत की सृष्टि हुई और मानव-समानता, उदारता, सहनशीलता व स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों पर आधारित था। फलतः सामाजिक व्यवस्था व धार्मिक जीवन को लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित करने की कोशिश गयी। साथ ही, विद्वानों की मान्यता है कि भारत में मूर्ति-पूजा का व्यापक प्रसार बौद्ध धर्म ने किया। इतना ही नहीं, लोक-साहित्य निर्माण और विकास में बौद्ध का विशेष

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

योगदान है। महात्मा बुद्ध ने अपना धर्मोपदेश जन-साधारण की बोलचाल की भाषा में दिया। इन सब के परिणामस्वरूप सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता को सुदृढता प्राप्त हुई एवं राजनैतिक एकता व राष्ट्रीय विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया। बौद्ध धर्म के सिद्धान्त, विचार और नैतिकता का विशेष प्रभाव हिन्दू धर्म पर पड़ा। इसी काल में भवन-निर्माण कला, वास्तुकला, चित्रकला और मूर्तिकला का विस्तार एवं विकास हुआ।

मौर्य काल

भारत के विकास का श्रीणेश इसी काल में हुआ था इस युग में ही उत्री भारत के विश्रृंखलित राजनैतिक जीवन को एकरूपता प्राप्त हुई थी। भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर मंडराने वाले कतिपय छोट-छोटे राज्यों के स्थान पर, एक विशाल केन्द्रीय शासन का निर्माण इसी काल में हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक जैसे सम्राटों का उद्भव इसी युग में हुआ था। इसी युग में विश्व विख्यात धार्मिक आंदोलन का शिलान्यास हुआ था। विश्व के विशाल रंग-मंच पर भारत को गौरवमय स्थान प्रदान के अभिनव प्रयास का सूत्रपात इसी युग में हुआ था। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी दृष्टियों से मौर्य-काल का पुर्णतः विकास हुआ था।

मौर्य युग भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का उदभव राजनैतिक एकता हेतु हुआ। सामाजिक जीवन का आधार जाति-प्रथा और आश्रम-व्यवस्था ही थी। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य व शुद्र-समाज इन चार वर्णों में विभाजित था। अस्पुश्य पंचम वर्ण में थे। महागुरू कौटिलय के 'अर्थशास्त्र' में कर्षक, कारूशिल्पिन, वैदेहक आदि विभिन्न जातियों का विवरण मिलता है। मेगास्थनीज ने सात वर्णो दार्शनिक, किसान, ग्वाले, कारीगर, सैनिक, निरीक्षक और आमात्य-का उल्लेख किया है। प्रायः अनार्य लोग ही होते थे जो बेचे और खरीदे जा सकते थे। इस युग में स्त्रियों की स्थिति उन्नत थी। समाज में उनका आदर एवं सम्मान होता था। उन्हें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। कुछ स्त्रियाँ जैन या बौद्ध धर्म में भिक्षुणियाँ बनकर दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर भ्रमण करती थीं। पर कौटिल्य के अनुसार स्त्रियों को उच्च शिक्षा देना और मेगास्थनीज के अनुसार उन्हें दार्शनिक ज्ञान देना उपयुक्त नहीं माना जाता था। यह युग धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का समय था। यह निसंदेह भारी सामाजिक परिवर्तन का युग था।

गुप्त काल-भारत के इतिहास में गुप्त काल एक गौरव पूर्ण इतिहास रहा। इस युग में भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे प्रगति आई। कुशाणों के पतन के बाद संपूर्ण उत्तरी भारत का राजनैतिक जीवन विश्रृंखलित हो गया था, छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

गये थे और उन्हें एक राजनैतिक सूत्र में बाँधने वाला कोई न था। गुप्त काल में देश को राजनैतिक एकता प्रदान कर सुख-शान्ति एवं समृद्धि प्रदान करने का श्रेय गुप्त राजवंश को ही है। इस राजवंश में समुद्रगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे महान् पराक्रमी शासक हुये है। इस युग में भारतीयों में आत्म-चेतना, आत्म-संस्कार और विकास की भावना पैदा होने लगी। गुप्त राजाओं की दिग्विजय, आदर्श शासन, उदार नीति, विद्या एवं कला के प्रेम ने इस प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहित किया। गुप्त राजाओं के प्रश्रय में लुप्त वैदिक परम्परा पुनः जागृत हो उठी और सामाजिक व्यवस्था में वर्णो के महत्व में बढोतरी होने लगी। वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शुद्र लोग अपने-अपने वर्गों के निर्देश के अनुसार व्यवसाय करते थे। वैदिक धर्म का पुनरूत्थान इस युग में हुआ। वैदिक युग के प्रजापति, विष्णु, शिव, सविता आदि के रूप में व्यक्तिकरण कर उन्हें जनता की भक्ति का प्रधान सम्बल बनाया गया था। वैष्णव और शैव-धर्म भी अत्यंत लोकप्रिय हो गये। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे साहित्य-संगीत अनुरागी शासकों के समय में संस्कृत साहित्य, काव्य, नाटक, कथा साहित्य, दर्शन, संगीत, ज्योतिष गणित, वैद्यक, रसायनशास्त्र आदि के क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण उन्नति हुई।

राजपूत काल

इनके निकटतम सभी राज्यों में संस्थापक राजपूत थे। सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद से मुसलमानों के आगमन तक का समय राजपूत युग कहलाता है। इस युग में प्राचीन सामाजिक व्यवस्था नष्ट हो गई थी। चार मूल वर्णो को समाप्त कर विभिन्न जातियों और उपजातियों का बीजारोपन हुआ। प्रादेशिक सीमाओं के अनुसार भी के अनुसार भी विभिन्न उपजातियाँ जैसे ब्राह्मणों में कन्नौजी, गौड, कान्यकुब्ज, तेलगू, कोंकणस्थ ब्राह्मण बादि बन गई थी। कोरी-तंतुवाय, सुनार, धनियाँ, ग्वाले, लुहार, तेली, माली, मछुए, खटीक, बंसफोड आदि अन्य व्यावसायिक उपजातियाँ बन गई थीं। राजपूतों और सामन्तों को समाज में श्रेष्ठवर्ग में रखा गया, जबकि धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च था। पर विभिन्न जातियों व उपजातियों के बहुल्य के कारण समाज में एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। सब अपने-अपने धर्म व संस्कार की रक्षा में लगे हुए थे। जिनका परिणाम समाज में रूढिवादिता, असहिष्णुता, संकीर्णता आदि बुराइयों का जन्म था। जाति-बन्धन काफी कठोर थे। सजातीय विवाह ही अच्छा माना जाता था। अन्तर्जातीय विवाह धीरे-धीरे समाप्त कर दिया गया था और इसका प्रचलन केवल राजवंश तक ही सीमित रह गया था। अनुोल विवाह के भी उदाहरण पाये जाते हैं। राजकुलों में स्वयंवर की भी प्रथा थी। बाल विवाह होता था, विधवा विवाह माननीय नही था।

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

समाज में बहु-पत्नी विवाह प्रथा प्रचलित थी। राजपूत स्त्रियाँ नारीत्व के उच्च आदर्शों का पोषण करती थीं तथा आचार-विचार में विशुद्ध होती थीं। 'जौहर' प्रथा इस समय में सती एवं जौहर प्रथा का प्रचलन था। राजपूत युग के धार्मिक जीवन में कोई विशिष्ट मौलिकता नहीं थी। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन धर्म का भी प्रचलन था। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन धर्म का भी प्रचलन था। साथ ही, वैष्णव व शैव धर्म का भी पर्याप्त विकास इस युग में हुआ। इसी युग में नगर वधू के रूप देवदासी प्रथा का जन्म हुआ था।

मध्य काल

भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक नए युग का प्रारंभ तब हुआ जब मुसलमानों का आठवीं सदी के प्रथम से ही राज्य स्थापित हुआ। मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद भारत में विकास की होड लग गई तथा भारत में भौतिक जीवन की विशिष्ट प्रधानता हो गई। चूँकि मुसलमान शासक आराम एवं शानःशौकत का जीवन व्यतीत करने के पक्ष में थे। यही वजह है कि तत्कालीन साहित्य तथा कला तक में भौतिकवादी दृष्टिकोण की झलक है। इस काल में हिन्दुओं की जाति-प्रथा में काफी कठोरता उत्पन्न हो गई थी। हिन्दुओं ने मुसलमानों के प्रभावों से अपनी रक्षा करने के लिए अपनी जाति-प्रथा के प्रतिबन्धों को काफी जटिल बना दिया था। एक जाति दूसरी जाति से स्पष्ट रूप से पृथक् हो गई और अन्तविवाद के नियमों को ढ़ृढतापूर्वक लागू किया गया। मुसलमानों में पर्दे की प्रथा का प्रचलन था। उनकी देखा-देखी हिन्दुओं में भी पर्दा-प्रथा चल पडी और प्रतिष्ठा का उक विषय बन गई। हिन्दुओ में बाल-विवाह का साफ तौर पर प्रचलन इसी युग में हुआ। विधवा-विवाह पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा राजपूतों में जौहर की प्रथा शुरू हो गई। सती प्रथा का अत्यधिक प्रचार इसी काल में हुआ। जाति-प्रथा की कठोरता की प्रतिक्रियास्वरूप तथा अन्य कारणों से भारत में इसी काल में भक्ति-आन्देलन का जन्म हुआ। इस आन्दोलन के प्रवर्तकों ने लोगों को धार्मिक आडम्बर तथा बाहरी दिखावे को त्यागकर सत्य की खोज करने हेतु भक्ति मार्ग को ग्रहण करने का उपदेश दिया।

आधुनिक काल

सन् 1857 में भारत वर्ष में मुस्लिम साम्राज्य का समापन होने के बाद अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार स्थापित हुआ तथा परिणामस्वरूप एक नवीन युग का आरंभ हुआ जो आधुनिक काल कहलाया। यह नव-जागरण तथा प्रगति का काल

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

था। नवीन पाश्चात्य विचारों तथा वैज्ञानिक ज्ञान ने सम्पूर्ण भारतीय जीवन का स्वरूप परिवर्तित कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी 17वीं सदी से ही भारत में सक्रिय थी। इस युग में इस देश में ब्रिटिशों के आने से विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति हुई तथा आविष्कृत वस्तुओं से भारतवर्ष लाभान्वित हुआ। इससे धार्मिक तथा सामाजिक बाहरी आडम्बर तथा रूढिवादिता कम हो गई तथा भारत कर्मशील बन गया। सामाजिक-धार्मिक सुधार के मार्ग प्रशस्त हुए। अंग्रेजी शासन के प्रारंभ होते ही कन्या हत्या बंद होने लगी और राजाराममोहन राय के प्रयासों के फलस्वरूप सती प्रथा भी समाप्त हो गयी। समाज सुधार के कारण बाल-विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और विधवा-विवाह की अनुमति देकर असंख्य विधवाओं के निराशापूर्ण जीवन में आशा की किरण प्रज्जवलित हुई। स्त्रियों को पर्दे से निकाला गया और उनकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व-विकास की समुचित व्यवस्था की गई। बाद के युग में स्त्रियों एवं पुरूषों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक रूप से समान अधिकार प्राप्त हुए। जाति-प्रथा को समाप्त करने हेतु अछूजों के द्वारा सक्रिय आन्दोलन चलाया गया। अब अस्पृश्यता को अवैध घोषित कर दिया गया और हरिजनों को विशेष अधिकार दिये गये हैं। अन्तर्जातीय विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की गई और दहेज लेना या देना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप संयुक्त परिवार का तेजी से विघटन हो रहा है। पर ग्रामीण भारत की बहुमुखी उन्नति के लिए पंचायतों का फिर से संगठन किया गया है। इतना ही नहीं, भारत के जंगलों तथा पहाडी-पठारी भागों में रहने वाले आदिवासियों या जनजातियों के पिछडेपन को भी दूर करने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर प्रयास किया जा रहा है। धर्म को परिष्कृत तथा परिमार्जित करने हेतु ब्रह्मसमाज, देवसमाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज रामकृष्ण मिशन, राधास्वामी सत्संग, थियासोफिकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज चलाये गये थे।

आधुनिक भारत में आज नव समाज निर्मित हो चुका है जो रूढिवादिता, सांप्रदायिकता एवं ब्राह्य आडम्बरों से मुक्त है। यह एक विकासशील देश बनकर विश्व विख्यात हो चुका है। सामाजिक परिवर्तन ही विकास मुख्य आधार है। यह विकास ही वैज्ञानिक मानसिकता का द्योतक है।

भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में सामाजिक समरसता

भारत में सामाजिक विकास की अवधारणा केवल आर्थिक प्रगति या भौतिक संसाधनों की उपलब्धता तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह एक समग्र प्रक्रिया रही है जिसमें सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामुदायिक पक्षों को

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

समान महत्व दिया गया है। भारतीय समाज की संरचना विविधता, सह-अस्तित्व और संवाद पर आधारित रही है, और इसका मूल आधार भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित है। यह परम्परा न केवल ज्ञान के संप्रेषण की प्रणाली है, बल्कि सामाजिक चेतना, नैतिकता और समावेशिता का स्रोत भी है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में "ऋत", "धर्म", "कर्म" और "अहिंसा" जैसे सिद्धांत सामाजिक जीवन के मूल स्तंभ रहे हैं। इन सिद्धांतों ने समाज को एक नैतिक दिशा दी, जिसमें व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से जुड़ा हुआ माना गया। वैदिक साहित्य, उपनिषद, बौद्ध और जैन दर्शन, लोककथाएँ, स्मृतियाँ और पुराण—all ने सामाजिक उत्तरदायित्व, सहिष्णुता और करुणा को जीवन का अभिन्न अंग माना है। इस परम्परा में शिक्षा, चिकित्सा, न्याय और शासन सभी को लोकहित के दृष्टिकोण से देखा गया है।

सामाजिक विकास के आधुनिक उपागमों में अक्सर आर्थिक संकेतकों, मानव विकास सूचकांक, साक्षरता दर, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता आदि को प्राथमिकता दी जाती है। जबकि ये सभी आवश्यक हैं, परंतु भारतीय संदर्भ में सामाजिक विकास को केवल भौतिक उपलब्धियों से नहीं मापा जा सकता। यहाँ सामाजिक विकास का अर्थ है—समाज में समता, न्याय, सहभागिता, सांस्कृतिक पुनरुत्थान और नैतिक पुनर्स्थापना। यही वह बिंदु है जहाँ भारतीय ज्ञान परम्परा एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है।

उदाहरण के लिए, बौद्ध दर्शन का प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत यह दर्शाता है कि समाज में कोई भी घटना या समस्या स्वतंत्र रूप से उत्पन्न नहीं होती, बल्कि वह अन्य कारकों से जुड़ी होती है। यह दृष्टिकोण सामाजिक समस्याओं जैसे गरीबी, भेदभाव, हिंसा को समझने और हल करने के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसी प्रकार, उपनिषदों में वर्णित "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना आज के वैश्विक सामाजिक विकास के लिए एक आदर्श दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में सामुदायिक शिक्षा, लोकसंवाद, पंचायती व्यवस्था, और सहकारी जीवनशैली को सामाजिक विकास के आधार स्तंभ माना गया है। गुरुकुल प्रणाली, जहाँ शिक्षा केवल बौद्धिक नहीं बल्कि नैतिक और सामाजिक विकास का माध्यम थी, आज के समय में पुनः प्रासंगिक हो उठी है। यह प्रणाली समाज को संस्कारित, उत्तरदायी और सह-अस्तित्वशील नागरिक प्रदान करती थी। आज जब शिक्षा प्रणाली रोजगार-केंद्रित और प्रतिस्पर्धात्मक होती जा

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

रही है, गुरुकुल के मूल्य जैसे गुरु-शिष्य संवाद, सेवा, संयम और समर्पण सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में सामाजिक विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है सहजता और स्वाभाविकता। गाँधीजी ने इसी परम्परा को अपनाते हुए ग्राम स्वराज, नैतिक शिक्षा और खादी जैसे उपागमों को सामाजिक विकास के साधन के रूप में प्रस्तुत किया। उनका दृष्टिकोण यह था कि समाज का विकास तब तक अधूरा रहेगा जब तक वह अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा नहीं होगा।

आज के समय में जब सामाजिक विकास की योजनाएँ अक्सर ऊपर से नीचे की ओर लागू की जाती हैं, भारतीय ज्ञान परम्परा हमें यह सिखाती है कि परिवर्तन की प्रक्रिया नीचे से ऊपर की ओर होनी चाहिए—जहाँ समुदाय स्वयं अपनी आवश्यकताओं, समस्याओं और समाधानों को परिभाषित करे। यह दृष्टिकोण न केवल अधिक प्रभावी है, बल्कि यह समाज को आत्मनिर्भर, जागरूक और उत्तरदायी बनाता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत में सामाजिक विकास का कोई भी उपागम तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक वह भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों, सिद्धांतों और दृष्टिकोणों को आत्मसात न करे। यह परम्परा हमें एक ऐसा सामाजिक दर्शन प्रदान करती है, जिसमें विकास केवल संसाधनों की उपलब्धता नहीं, बल्कि चेतना, नैतिकता और समावेशिता का विस्तार है। यदि आधुनिक योजनाएँ और नीतियाँ इस परम्परा से प्रेरणा लें, तो भारत का सामाजिक विकास न केवल तेज़ होगा, बल्कि अधिक न्यायपूर्ण, टिकाऊ और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध भी होगा।

निष्कर्ष

मैकाइवर व पेज समाजशास्त्रियों ने अपनी पुस्तक 'समाज' ;ैवबपमजलद्ध में सामाजिक विकास की सबसे उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी है-"गुणात्मक रूप से परिभाषित की जाने वाली यह एक प्रक्रियाहै, जिसका संरचनात्मक या प्रकार्यात्मक विभेदीकरण से सम्बन्ध होता है।" मैकाइवर व पेज के विचारानुसार सामाजिक विकास में विभेदीकरण तथा एकीकरण अवश्य होता है। उदाहरण प्राचीन काल में धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, चिकित्सा,

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

सांस्कृतिक क्रियाएँ सभी घनिष्ट रूप से घुली-मिली थीं। एक मानव सभ्यता का विकास हुआ, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक व सांस्कृतिक क्रियाएँ अपना स्वतन्त्र या पृथक् अस्तित्व रखने लगीं।

जब ऐसा होने लगा तो राज्य, परिवार, पाठशाला, चिकित्सालय, आर्थिक संगठन, धार्मिक समिति आदि विशेष समितियाँ बनने लगीं। आज तो विशेषीकरण की प्रवृत्ति इतनी अधिक फैल गयी है कि जीवन के प्रत्येक छोटे से छोटे क्षेत्र में विशेषज्ञ, विशेष ज्ञान तथा विशेष समितियाँ बनने लगी हैं। इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक विशेषीकरण की यह प्रवृत्ति बढती चली जा रही है। मानव के कार्य-कलापों में विभेदीकरण, विक्षेपीकरण अथवा पैनापन आता जा रहा है, लेकिन साथ ही साथ इन सभी क्रियाकलापों में एकीकरण व परस्पर सम्बन्ध अवश्य देखने में आता है। अतः हम यह कह सकते है कि एक विकास करने वाले समाज में मानव-क्रियाओं में विभेदीकरण तथा एकीकरण की क्रमशः वृद्धि होनी चाहिए। किसी समाज में बदलाव तब होता है। जब नवीन तत्वों को आत्मसात् कर सके। उन विविध कारकों में से जिन्होंने हमारे समाज को अनुकूल अथवा एकीकरण के लिए प्रोत्साहित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रूहेला, एस. पी. (2012). *विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन।

पुरोहित, अंजना. (2013). *भारतीय कला*. वाराणसी: बुक ओसियन पब्लिकेशन।

सिन्हा, आलोक. (2014–2015). *भारतीय समाज*. वाराणसी: ग्रीन लीफ पब्लिकेशन।

सिंह, योगेन्द्र. (2016). *भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन।

भारद्वाज, चन्द्रशेखर. (वर्ष अनुपलब्ध). *भारतीय वास्तुकला का इतिहास*. नई दिल्ली: विश्वभारती पब्लिकेशन्स।

Author's Profile

अभिषेक वर्मा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) के शिक्षा विभाग में शोधरत हैं। वे *शैक्षिक प्रौद्योगिकी* के क्षेत्र में विशेषज्ञता रखते हैं, जो अधिगम अनुभवों के डिज़ाइन, विकास और मूल्यांकन से संबंधित है। उनकी शोध अभिरुचि इस तथ्य पर केंद्रित है कि किस प्रकार तकनीकी नवाचारों के माध्यम से शिक्षा को अधिक समावेशी, सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाया जा सकता है।

उन्होंने इसी विश्वविद्यालय से शैक्षिक प्रौद्योगिकी में एम.फिल. उपाधि प्राप्त की है तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षा में स्नातकोत्तर उपाधि अर्जित की है। अभिषेक ने ऑनलाइन शिक्षण, गेमीफिकेशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और लर्निंग एनालिटिक्स जैसे समकालीन विषयों पर अनेक शोध पत्र प्रकाशित किए हैं, जो राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियों में प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

वे शिक्षा विषयक तीन संपादित पुस्तकों के संपादक हैं, जिनमें शैक्षिक नवाचार, नीति निर्माण, और अधिगम पद्धतियों पर केंद्रित बहुआयामी विमर्श समाहित हैं। एक लेखक के रूप में वे शोध और शिक्षण के अनुभवों को अकादमिक लेखन के माध्यम से साझा करने में रुचि रखते हैं।

वर्तमान में वे सामाजिक विज्ञान को पढ़ाने और सीखने हेतु एक *गेमिफाइड शिक्षण वातावरण* के विकास और मूल्यांकन पर आधारित अपने डॉक्टोरल शोध पर कार्यरत हैं। उनका शोध शिक्षण-अधिगम को अधिक प्रेरक, सहभागितापूर्ण और मापन योग्य बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

अनुराग सिंह समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक प्रतिबद्ध शोधकर्ता एवं शिक्षाविद् हैं। उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में शोध कार्य में कार्यरत है। उनकी शैक्षणिक यात्रा ग्रामीण पृष्ठभूमि से प्रारंभ होकर उच्च शिक्षा के विविध आयामों तक विस्तृत रही है।

इन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समाजशास्त्र के विविध विमर्शों जैसे ग्रामीण समाजशास्त्र, सांस्कृतिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्रीय सिद्धांत, सामाजिक परिवर्तन एवं शहरीकरण पर आधारित कई शोध पत्र प्रकाशित किए हैं। उन्होंने बीस से अधिक संगोष्ठियों एवं अकादमिक सम्मेलनों में सक्रिय सहभागिता की है। वे मध्य प्रदेश शासन के उच्च शिक्षा विभाग में *अतिथि प्राध्यापक* के रूप में कार्य कर चुके हैं।

एक वक्ता के रूप में **अनुराग सिंह** ने विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र के समकालीन विषयों पर सारगर्भित व्याख्यान दिए हैं। उनकी अकादमिक दृष्टि हाशिए पर स्थित समुदायों के अध्ययन, सामाजिक संरचनाओं के पुनर्पाठ, तथा परिवर्तनशील सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की आलोचनात्मक समझ पर केंद्रित रही है।

समाजशास्त्र के क्षेत्र में उनका कार्य एक विद्वान शोधकर्ता और संकाय सदस्य दोनों भूमिकाओं में गहन अनुभव का परिचायक है।

ISBN 978-93-7361-743-5

αIP
Alpha International
Publication

9 789373 617435